International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 5, Issue 4, April 2018
Website-www.aarf.asia,**Email**:editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

हिंदी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का योगदान

डॉ शिवदयाल पटेल,सहायक प्राध्यापक हिंदी
शासकीय महाविद्यालय बरपाली, जिला- कोरबा, छत्तीसगढ़
ईमेल आईडी : patelshivdayal1@gmail.com

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जीवन वृत्त एवं कृतित्व

हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अपनी एक अलग पहचान है। शुक्लजी का जन्म आश्विन पुर्णिमा सम्वत् 1940 वि० (सन् 1883) को हुआ था। आचार्य शुक्ल के पूर्वज रावती नदी के किनारे बसे भेडी ग्राम (गोरखपुर) के निवासी थे। शुक्ल की दादी अपने पति पंडित शिवदत्त शुक्ल की मुत्यु हो जाने के बाद अपने चार - पाँच वर्ष के पुत्र चन्द्रबली शुक्ल के साथ नगर की रानी के पास आ गई। क्योंकि रानी उन्हें अपनी पुत्री के समान मानती थी, इसलिए उन्होंने नगर से दो मील दूरी पर अगौना नामक स्थान पर ही कुछ भूमि उपहार स्वरूप दे दी और उनके रहने के के लिए एक घर भी बना दिया। अगौना नामक स्थान पर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म हुआ था। उस समय तत्कालीन समाज में मुस्लिम संस्कृति और तहज़ीब का बोल-बाला था। पिता चन्द्रबली भी इस रंग में काफी हद तक रंगे थे। अतएव घर में अरबी - फारसी तथा बहुत शिष्ट उर्दू ही बोलते थे। शुक्ल पर भी इसका प्रभाव पड़ा और छः वर्ष की आयु में एक मदरसे में उन्हें उर्दू- फ़ारसी पढ़ने के लिए प्रविष्ट करा दिया गया। आचार्य शुक्ल बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि के थे तथा हिन्दी-उर्दू स्कूल में ये हिन्दी इतने उत्साहित होकर पढ़ते थे कि दो वर्ष में ही वह चौथी कक्षा में आ गए। आचार्य शुक्ल अपनी दादी माँ से 'रामायण', 'सूरसागर' तथा अपने पिता चन्द्रबली से 'रामचरितमानस' और भारतेन्दु के नाटकों का बड़े उत्साह से सुनते थे, इसी बीच उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। तब शुक्ल के पिता परिवार को मिर्जापुर ले आए। शुक्ल के आरम्भिक जीवन का अधिकतर भाग मिर्जापुर में ही व्यतीत हुआ। उस समय विवाह बहुत जल्दी कर दिए जाते थे। शुक्ल का विवाह भी मात्र 12 वर्ष की आयु में ही कर दिया गया था। सन् 1893 में मिर्जापुर आने पर रमई - पट्टी मुहल्ले के एंग्लो संस्कृत जुबली स्कूल में उनका नाम लिखाया गया। वहीं से चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने उर्दू के साथ अंग्रेज़ी लेकर मिडिल की परीक्षा पास की। इनके पड़ोस में पंडित विन्ध्येश्वरी प्रसाद रहते थे जो संस्कृत साहित्य के एक भावुक तथा तेजस्वी विद्वान थे। वे कभी-कभार अपने शिष्य मण्डली को लेकर जंगल-पहाड़ों में निकल जाते थे और 'उत्तररामचरित' के श्लोकों को बड़े ही मधुर वाणी के साथ पढ़ते थे। बालक रामचन्द्र भी उनके साथ अक्सर जाया करते थे, बालपन में ही उनका परिचय बाबू काशीप्रसाद जायसवाल से हो गया। वे हिन्दी के विद्वान थे जिस कारण से शुक्ल पर उनका प्रभाव पड़ा और वह हिन्दी की ओर उत्साहित होने लगे। धीरे-धीरे उनका परिचय पंडित केदारनाथ पाठक से हुआ। पाठक की कृपा से उन्हें हिन्दी और बंगला की अच्छी - अच्छी पुस्तकें पढ़ने को मिल जाती थी। सन् 1901 में उन्होंने लन्दन मिशन स्कूल से अंतिम परीक्षा पास की। तत्पश्चात सन् 1901 में उन्होंने इलाहबाद में कायस्थ पाठशाला में इण्टरमिडिएट में पढ़ने के लिए अपना नाम लिखवाया कुछ अशान्ति

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

के कारण वे लौट आए। शुक्ल को पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था, और योग्य अध्यापकों के प्रोत्साहन से उनका अंग्रेज़ी ज्ञान बहुत पुष्ट हो चला था। अंग्रेज़ी ज्ञान को बढ़ाने में पंडित रामगरीब चौबे नामक शुक्ल के पिता के स्नेहभाजक एक विद्वान् का भी हाथ था जो शुक्ल को अंग्रेज़ी की चुनी हुई श्रेष्ठ पुस्तकें लाकर दिया करते थे, सम्भवत: इसी कारण मिडिल पास करते - करते शुक्ल जी को एम०ए० के विद्यार्थियों जैसी अंग्रेज़ी आने लगी थी। उन्होंने स्कूल पूरा करने से पहले ही एडिसन के 'एसे ऑन- इमेजिनेशन' का 'कल्पना के आनन्द' नाम से हिन्दी में अनुवाद कर डाला था। सन् 1903 में आचार्य शुक्ल ने कचहरी में अप्रेन्टिसशिप शुरू की परन्तु चार - पाँच दिनों में वहाँ के वातावरण से उनका मन ऐसा खट्टा हो गया कि उन्हें सरकारी नौकरी से घृणा होने लगी। इसी कारण से जब सन् 1904 में उन्हें नायब तहसीलदार बनने का सुयोग हासिल हुआ तो उसे उन्होंने ठुकरा दिया। लगभग इसी समय उन्होंने अंग्रेजी में अपना पहला निबन्ध "What has India do to?" हिन्दुस्तान रिव्यू में छपाया, जिसमें भारतवासियों के कर्त्तव्य और सरकारी नौकरियों के प्रति उनके दृष्टिकोण का पता चलता है। शुक्ल के जीवन में इन तेईस वर्षों का इतिहास उनकी संस्कार -चेतना और व्यक्तित्व-निर्माण का इतिहास है। काशी आगमन के बाद से उनके जीवन का एक नया इतिहास शुरू हुआ, जिसे उनके संघर्ष और उपलब्धि का इतिहास कहा जा सकता है। आचार्य शुक्ल सन् 1908 तक मिर्जापुर में ही लन्दन मिशन स्कूल में ड्राइंग मास्टर बने। उस समय उनकी तनख्वाह थी मात्र बीस रुपये महीना। इस पद पर वह काशी जाने से पहले सन् 1908 तक बने रहे इसके उपरान्त 'काशी नागरी प्रचारिणी-सभा' का 'हिन्दी-कोश' का कार्य आरम्भ हुआ। कोश का कार्य समाप्त होने को था ही कि वह काशी विश्वविद्यालय में निबन्ध लेखन की शिक्षा देने के लिए नियुक्त किए गए। इसके बाद उन्होंने हिन्दी साहित्य अध्यापन का भी कार्य किया। कई वर्षों तक उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी सम्पादन किया। मात्र तेरह वर्ष की आयु में ही खेल-खेल में इन्होंने 'हास्य विनोद' नाटक लिखा जिसे एक बाल सखा मित्र ने खेल-खेल में ही फाड़ डाला। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'पृथ्वीराज', 'संयोगिता स्वयंवर' और 'दीप-निर्वाण' भी लिखा था। खेल - खेल में क्रीड़ा स्वरूप वह अपने सहपाठियों के निन्दा में भी ये कविता और दोहे लिखा करते थे। 'भाषा का विस्तार' एक लेख 'आनंदकादंबिनी' में प्रकाशित हुआ था इसे शुक्ल का पहला गद्य कहा जा सकता है। इसके पश्चात् इनके बहुत से लेख और कविताएँ 'सरस्वती', 'समालोचक' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इन्होंने समय-समय पर बहुत से लेख लिखे जो विभिन्न पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। साहित्य विषय पर उन्होंने 'कविता क्या है?', 'भारतेन्दु की आलोचना', 'भाषा का विस्तार' आदि निबन्ध लिखे। 'कविता क्या है?' इसका पूर्ण रूप रसमीमांसा मे विकसित रूप में मिलता है। मनोविकारों पर भी इन्होंने लिखा है इसके अतिरिक्त इन्होंने 'शिशिर - पथिक', वसन्त-पथिक', 'भारत- वसन्त' आदि कविताएँ भी लिखी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक स्वाभिमानी पुरुष थे। हिन्दी भाषा तथा साहित्य के साथ की गई अवमानना को वह सहन नहीं करते थे। एक बार पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'शिशिर - पथिक' नामक कविता के मूल कविता को संशोधित करके प्रकाशित किया था। उन संशोधनों पर शुक्ल को बड़ा दुःख हुआ और अपना दुःख प्रकट करने के लिए उन्होंने द्विवेदी जी को एक चित्र बना कर दिया जिसमे सरस्वती की मूर्ति को हनुमान जी अपनी गदा से तोड़ रहे थे। शुक्ल ने द्विवेदी जी के बारे में कहा है- “द्विवेदी जी रसिक हैं पर कवि का हृदय उन्हें नहीं मिला। वे सरस्वती के 'विचित्र वर्णाभरण' तक ही गए। उसकी अंतरात्मा तक न पहुँच पाए।" स्वभाव से संकोची वास्तव में उनका आचरण स्वच्छ और उच्च प्रवृत्ति का था। सरल होने के कारण चतुर लोग उनसे अपना काम निकलवा लेते थे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का सृजनात्मक जीवन

शुक्ल जी वास्तव में हिन्दी समीक्षा के आधार स्तम्भ रहे हैं। बहुत छोटी-सी अवस्था में उन्होंने कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थी। हिन्दी के प्राय: सभी विद्वानों ने उनके लेखन का लोहा माना है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में शुक्ल का सर्वप्रथम प्रस्फुटन 'भाषा का विस्तार' नामक लेख से माना जाता है यह लेख सन् 1899 ई० में 'आनंद कादंबिनी' में प्रकाशित हुआ था। अपने मिर्जापुर निवास काल में इन्होंने कुछ लेख भी लिखे। अपनी 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक कहानी से भारतीय स्थानों के बारे में पता चलता है तथा इन कहानियों से शुक्ल ने अपने साहित्य की कहानी-विधा को भी सुदृढ़ किया। 'कविता क्या है?' नामक लेख भी शुक्ल ने लिखा। इस लेख में काव्य के संबंध में जो कुछ बातें शुक्ल ने कही हैं वही आगे चलकर 'रसमीमांसा' में विकसित रूप में मिलती हैं। सन् 1908 में पडित केदारनाथ पाठक के सम्पर्क में आने से उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' के 'हिन्दी शब्दसागर' में कार्य किया। उनके जीवन का यह एक सुनहरा मोड़ था। यहीं से उनकी साहित्य की गतिविधियों को परिपक्वता तथा प्रौढ़ता प्राप्त हुई। उनकी रचनाओं को नए पंख लग गए। उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुस्तक की रचना की। इस रचना के बाद 'तुलसी ग्रंथावली' लिखी। तुलसीदास उनके श्रेष्ठ तथा प्रिय कवि के रूप में उनके हृदय पर छा गए। 'जायसी ग्रंथावली' की रचना के बाद आचार्य जी सर्वश्रेष्ठ आलोचक के रूप में जाने-पहचाने लगे। हिन्दी की साहित्यिक कृतियों का भी शुक्ल ने अपने इसी कार्यकाल में अनुवाद किया।

आचार्य शुक्ल वास्तव में व्यक्ति के रूप में वज्र से भी कठोर और कुसम से भी कोमल थे, परन्तु उनकी कठोरता विचारों, विश्वासों और मर्यादाओं के पालन में और कोमलता प्रकृति वर्णन, दीन-दुखियों और असहायों के प्रति आचरण में देखी जा सकती है। पत्रिकाओं में सम्पादक के रूप में कार्य करना उनकी कार्यकुशलता को दर्शाता है। उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी शोध - पत्रिका' के सम्पादन का कार्य बहुत ही दृढ़ता से किया है। वे अपने कार्य के प्रति सदैव नतमस्तक रहते थे। आचार्य जी ने मात्र बीस वर्ष की आयु में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के बराबर आलोचना करके उन्होंने अपने भावी आलोचक के स्थान को सुनिश्चित कर लिया था। जब वे विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए तो उन्होंने विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए बहुत से स्थाई महत्त्व के कार्य किए। उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण आकर्षक रूप उनका स्वाभिमान था। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह राजा वेणीमाधव सिंह द्वारा बार-बार आग्रह करने पर भी उनसे मिलने नहीं गए थे। उनका यह स्वाभिमान उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। 'गोस्वामी तुलसीदास', 'भ्रमरगीतसार', 'जायसी ग्रंथावली', 'चिन्तामणि भाग- एक, दो', 'रसमीमांसा' आदि कृतियों ने उन्हें हिन्दी साहित्य का अनमोल रत्न बना दिया तथा ये कृतियाँ उनकी साहित्य साधना की साक्षी हैं। ये कृतियाँ उनकी कीर्ति के आधार - स्तम्भ हैं। सन् 1922 से निरन्तर मृत्यु पर्यन्त आचार्य शुक्ल हिन्दी-साहित्य की समृद्धि तथा सेवा में संलग्न रहे हैं। आचार्य शुक्ल काव्यकला को लोकजीवन से सम्बद्ध करके देखते थे। उनके विचार से संसार सत्य और यथार्थ है। मानव हृदय में भावों का स्थायी आधार यही भौतिक संसार है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी इस मान्यता के विरुद्ध पड़ने वाले सभी सिद्धान्तों का विरोध किया। उन्होंने कल्पना- तत्त्व को भी वहीं तक महत्त्व दिया है, जहाँ तक वह जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से प्रेरित एवं सम्बद्ध हो।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल रचनाकार के रूप में

विश्वविद्यालय में नियुक्त होने के बाद आचार्य शुक्ल ने विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर स्थायी महत्त्व के कार्य किए। इससे पहले 'साहित्य', 'कल्पना का आनन्द', 'अपनी भाषा पर विचार', 'कविता क्या है?', 'उपन्यास' जैसे निबन्ध लिखिकर उन्होंने अपनी क्षमता का परिचय दिया था। भाव या

मनोविचार सभी निबन्ध सन् 1912 से सन् 1919 तक लिखे जा चुके थे और "विचार वीथी' के प्रकाशित होने से पहले 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हो चुके थे। साहित्य के इतिहास, समाजशास्त्र और विज्ञान के अध्ययन में भी पूरे मनोयोग से प्रवृत्त रहे हैं। आचार्य शुक्ल की समस्त रचनाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, मौलिक एवं अनूदित। मौलिक रचनाओं की भी दो कोटियाँ हैं - प्रमुख और गौण। हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं रसमीमांसा उनकी ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें उन्हें यथेष्ट यश मिला है। इन दो रचनाओं को इनकी प्रमुख रचनाओं में गिना जाता है। गौण रचनाओं में उनकी कुछ कविताएँ, कहानियाँ और जीवनियाँ सम्मिलित हैं। अनूदित रचनाओं में 'कल्पना का आनन्द' और 'साहित्यक - निबन्ध' आते हैं। आचार्य शुक्ल रचनाओं को लोकजीवन से सम्बद्ध करके देखते थे। आचार्य शुक्ल एक प्रतिभाशाली समालोचक के रूप में गिने जाते हैं। उन्होंने रचनाकार के रूप में साहित्य को जो कुछ दिया है, नया दिया है। आचार्य शुक्ल ने आदर्श के धरातल पर परस्पर विरोधी धारणाओं, परम्पराओं, संस्कृतियों, सभ्यताओं आदि में तथा विज्ञान, शास्त्र, प्राचीन, नवीन आदि में जो समन्वय स्थापित किया उससे अभिभूत हुए बिना नहीं रहा जा सकता। पारंपरिक ग्रंथों की परिधि से बाहर निकलकर उनकी रस- सम्पृक्त दृष्टि और विवेचनशील प्रतिभा ने अपने से पूर्ववर्ती समकालीन आलोचना कर्म को एक नयी दिशा देकर उसे गहरा और विस्तृत किया। उनकी तार्किकता, विचारों की प्रौढ़ता तथा सूक्ष्म रस-दृष्टि ने हिन्दी - आलोचना को समृद्ध किया है। एक रचनाकार के रूप में आचार्य शुक्ल ख्याति लब्ध आचार्य शुक्ल ने रचनाकार के रूप में एक अभिनव, उदार, वैज्ञानिक, संतुलित एवं मानवतावादी दृष्टि प्रस्तुत की है। यह दृष्टि आचार्य को विशाल भारतीय वाङ्मय के गहन अध्ययन-मंथन तथा वर्तमान विश्व समाज की समस्याओं के चिंतन-मनन से प्राप्त हुई है। आचार्य की चिनतभूमि लोकमंगलवादी है। आचार्य अपनी रचनाओं को सर्वथा मौलिक एवं सुदृढ़ आधार प्रदान करने वाले शीर्षस्थ रचनाकार रहे हैं। आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व का एक अत्यन्त आकर्षक रूप उनका स्वाभिमान् था। उसकी रक्षा के लिए वे सर्वस्व त्याग देते थे। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वे राजा वेणीमाधव सिंह के बार - बार आग्रह करने पर भी उनके यहाँ नहीं गए थे और सन् 1933 ई० में विध्य प्रदेश के एक राजकुमार को उसके निवास पर जाकर पढ़ाने का निमन्त्रण स्वीकार किया। आचार्य शुक्ल का यह स्वाभिमान उनकी रचनाओं में सर्वत्र लक्षित होता है। उनके एक खास तरह से सोचने, समझने, निर्णय लेने और अपने व्यक्तित्व को विकसित करने की दिशा में उनके परिवेश ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

हिंदी आलोचना में योगदान

आलोचक के रूप में शुक्ल की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ उपलब्ध हैं। इनका सैद्धान्तिक समीक्षा - ग्रंथ 'रसमीमांसा' है, उनकी व्यावहारिक आलोचना का प्रौढ़तम रूप 'तुलसी', 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रस्तुत विभिन्न कवियों के संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिचयात्मक टिप्पणियों में प्रकट हुआ है। आचार्य की समीक्षा का सैद्धान्तिक आधार भारतीय 'रसवाद' है। इन्होंने उसे सर्वथा पूर्ण मानदंड माना है। शुक्ल ने जीवन की क्रियाभूमि, काव्य की भावभूमि और समीक्षा की विचारभूमि में अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। उनके सिद्धान्त जीवन के अनुभव से गृहित हैं। काव्य के सन्दर्भ में उनको परखा गया है और अन्ततः विवेक की कसौटी पर कसकर सिद्धान्त रूप में उपस्थित किया गया है। समीक्षा का जो सिद्धान्त इन तीनों में सामंजस्य नहीं ला सकता, वे सिद्धान्त उनको मान्य नहीं हैं। सामंजस्य की यह पूर्णता भारतीय 'रसवाद' में है, ऐसी उनकी मान्यता रही है जो कभी बदली नहीं। हिन्दी आलोचना में जो परिवर्तन आया उसे लक्ष्य कर आचार्य शुक्ल ने कहा है- "इस तृतीय उत्थान में समालोचना का आदर्श भी बदला, गुण-दोष के कथन के आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और अन्तःप्रवृत्ति की

छानबीन की और भी ध्यान दिया गया।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अकेले ऐसे आलोचक रहे हैं जिन्होंने परम्परागत आलोचना शैलियों के प्रति सम्मान का भाव रखकर अपने युग की आवश्यकताओं को पहचाना और उनके अनुरूप सही अर्थों में हिन्दी की अपनी आलोचना शैली को विकसित किया। कोई आलोचक किन साहित्यिक मूल्यों को महत्त्व देता है, इसका प्रमाण उसकी साहित्यिक पसन्द - नापसन्द से मिलता है। अपने आलोचक-कर्म के दौरान वह किस प्रकार के साहित्य में वह किन विशेषताओं को तरजीह देता है और नापसन्दगी की स्थिति में किन बातों की निन्दा करता है, इससे उसके साहित्यिक मूल्य, उसकी जीवन- दृष्टि उभर कर सामने आती है। आचार्य के आलोचक व्यक्तित्व की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी व्यापक और सजग दृष्टि रही है। अपने समय के हर साहित्यिक विवाद की तरफ उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया उस पर राय भी दी। वह चाहे 'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता का प्रश्न हो या विद्यापति की शृंगारिकता या भक्ति पर बहस हो। जितनी लगन से वे प्राचीन और मध्ययुगीन काव्य का विवेचन करते थे उतना ही ध्यान आधुनिक साहित्य और विषय पर भी देते थे। छायावाद और छायावादी कवियों का उनका विवेचन इसका प्रमाण है। आलोचक का काम केवल गुण-दोष विवेचन न होकर रचनाओं की सही समझ पैदा करना होता है। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में आदिकाल के विवेचन से ही इस दायित्व का निर्वाह किया। खास बात यह है कि वे प्रसंग-भेद से, आवश्यकतानुसार रचनाओं की अलग - अलग विशेषताओं का विवेचन करते हैं किसी पूर्व निर्धारित बंधे-बंधाए ढांचे के अनुसार नहीं। आलोचक के सामने सृजन, समीक्षण एवं व्यवस्थापन की जिम्मेवारी समवेत रूप में रहती है। आधुनिक हिन्दी- आलोचना के विकास में आचार्य शुक्ल का अपूर्व योगदान रहा है। इन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास की ही नहीं बल्कि हिन्दी - आलोचना की भी नींव रखकर समीक्षा एवं साहित्य इन दोनों के लेखन मे अपूर्व योगदान दिया है। आलोचना में आलोच्य ही प्रतिमान होता है। अतएव आलोच्य के सौन्दर्य का विवेचन ही आलोचक का कर्तव्य होता है। तटस्थ रहकर व्याख्या करना आलोचक का धर्म होता है। किन्तु उसके साथ ही आलोचक के संस्कार उसकी शिक्षा-दीक्षा और रुचि भी उसके साथ ही रहती है। स्थान- स्थान पर वह इनका भी उपयोग करता है। किन्तु अपनी रुचि और सिद्धान्त का उतना ही निदर्शन करना चाहिए, जितना समुचित हो। रुचि और सिद्धान्त थोपने से आलोचना का लक्ष्य अन्धकार में डूब जाता है। आचार्य शुक्ल की आलोचना में उनकी रुचि और विचारों का सम्यक समावेश है। शुक्ल ने आलोचना में नवीन नियमों का प्रयोग किया है जिसका लक्ष्य केवल मनुष्य की मनुष्यता की रक्षा करना है। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है - "बात यह है कि मनुष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा साधन और जटिल मण्डल बाँधता चला आ रहा है जिसके भीतर बंधा - बंधा बह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का सम्बन्ध भूला सा रहता है। परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर रहता है। इसी से अन्तःप्रवृत्ति में मनुष्यता को समय-समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य जाति के साथ लगी चली जा रही है और चली चलेगी।" इस शुक्ल की आलोचना दृष्टि इस प्रकार के उत्तम रचना को दृष्टि पथ में रखकर निर्मित हुई थी। यह दृष्टि प्रत्येक गुणी समालोचक में होती है और होनी भी चाहिए।

आचार्य की व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ रस - सिद्धान्त पर ही आधारित हैं। रस की उपेक्षा करके उन्होंने कोई भी आलोचना नहीं लिखी। इसका कारण यह है कि रस का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तर्जगत से है। शुक्ल की आलोचना- दृष्टि बारीकियों पर ही रहती है। उन्होंने मनोविकार और भाव - वृत्तियों को यथार्थ तथा जानने के लिए कुछ संकेत-सूत्र दिए हैं। आलोचक उन्नत साहित्य संस्कारों वाला एक विशिष्ट पाठक एवं मर्मी - भावक होता है। उसमें भावबोध की गहरी क्षमता, सहृदयता, विधायक कल्पना शक्ति और अन्तदृष्टि - सम्पन्नता तो होती ही है, साथ ही मर्म-उद्घाटन करता है। आलोचक आलोचना की साहित्यिक पकड़, सूझबूझ, बोधशक्ति, मूल्यदृष्टि एवं विश्लेषण सामर्थ्य की परीक्षा है। आचार्य शुक्ल न केवल हिन्दी-

साहित्य के बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के उन मनीषी एवं युगप्रवर्तक समीक्षकों में हैं जो प्राचीन आचार्यों की परम्परा में आते हैं। वे हिन्दी के युग - विधायक आलोचक तो है ही, आधुनिक भारतीय साहित्य में भी उनकी टक्कर के समीक्षक कम हैं। सैद्धान्तिक समीक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान अत्यन्त महत्त्व का है। उन्होंने हिन्दी के शीर्षस्थ कवियों - तुलसी, सूर, जायसी की तात्विक समीक्षा द्वारा आधुनिक भारतीय साहित्य में साहित्य - समीक्षा का अत्यन्त विशिष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया है। शुक्ल जिस युग में अवतरित हुए थे, आलोचना का वह शैशव काल था। आचार्य ने अपने गहरे भावबोध एवं सामंजस्यपूर्ण आलोचनात्मक विवेक एवं गहरी साहित्यिक अन्तदृष्टि द्वारा साहित्य चिन्तन का एक आकर्षक एवं भव्य प्रासाद खड़ा किया। शुक्ल ने अपने आलोचना विषयक चिन्तन को बहुत अंश तक अपनी व्यावहारिक समीक्षाओं के माध्यम से पुष्ट किया उनकी सैद्धान्तिक समीक्षा का आधार -ग्रंथ 'रसमीमांसा' है। इसमें उन्होंने रस - सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हुए जीवन और साहित्य के अन्तर्सम्बन्धों को वैज्ञानिक व्याख्या की है। उन्होंने रसों के प्रवर्तक भावों को अभिनव ढंग से बड़ी सूक्ष्मता के साथ वर्गीकृत करके व्याख्यायित एवं परिभाषित किया है। शुक्ल के समीक्षा - सिद्धान्तों और साहित्य-विषयक अवधारणाओं को उनकीव्यावहारिक समीक्षाएँ पुष्ट करती हैं। तुलसी, सूर, जायसी आदि के साथ ही हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध युगों की प्रवृत्तियों की व्याख्या एवं रचनाकारों के रचना- वैशिष्टय को सारगर्भित करती टिप्पणियों में उनकी व्यावहारिक आलोचना का प्रौढ़त्तम रूप दृष्टिगोचर होता है। जायसी के कृतित्व को प्रकाश में लाने और उन्हें प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य शुक्ल को है। आचार्य शुक्ल की ध्यावहारिक आलोचना का सर्वाधिक संतुलित एवं प्रौढ़त्तम रूप भ्रमरगीत की समीक्षा में दृष्टिगोचर होता है। वे सूर के सन्दर्भ में लोक संग्रह की वृत्ति के अभाव, वस्तुगांभीर्य की कमी तथा वर्ण्य विषय की परिमिति की चर्चा करने के साथ ही उनकी प्रेमव्यंजना, भाव प्रेरित वचनविदग्धता, वचनवक्रता की विविधता आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। जायसी की आलोचना में प्रयुक्त आलोचना- पद्धिति का उपयोग ही आचार्य ने तुलसी की आलोचना में किया है। उन्होंने तुलसी की भक्ति के स्वरूप-निर्धारण के साथ उससे लोकधर्मिता, मर्यादा, शील आदि का सम्बन्ध स्थापित किया है। उन्होंने तुलसी की भक्ति को शास्त्रानुमोदित मानते हुए उसे लोकमंगल की विधायिका स्वीकार किया है। तुलसी से जुड़ी आलोचना में वे उनकी भक्ति, शील - निरूपण या भावुकता के विवेचन में जितनी रुचि लेते हैं उतनी ही 'भ्रमरगीत सार' की आलोचना में भी लेते हैं। जायसी की आलोचना में वे अलंकारों की गणना न करके अलंकार और अलंकार्य पर संश्लिष्ट ढंग से विचार करते हैं। प्रेम और सौन्दर्य का मूल्य - स्तर विवेचन करते हैं, फलत: वह उनकी व्यावहारिक समीक्षाओं में सर्वाधिक संश्लिष्ट एवं प्रभावशाली हैं। शुक्ल की साहित्य सम्बन्धी अवधारणाएँ एवं समीक्षा - सिद्धान्त उनके व्यापक अध्ययन, बहुज्ञान समन्वित दृष्टि, गम्भीर साहित्यबोध, युगीन चिन्तन एवं मूल्य - दृष्टि के परिणाम हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

रामचन्द्र शुक्ल

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (भाग-10); आदर्श जीवन एवं राजप्रबंध शिक्षा, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण : संवत् 2014 वि.

(2)गोस्वामी तुलसीदास; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पन्द्रहवां संस्करण : संवत् 2017 वि.

(3)चिंतामणी (भाग-1); इंडियन प्रेस पब्लिकेशस प्रा. लि.; इलाहावाद, संस्करण : 1997

(4) जायसी ग्रंथावली; (संपादित कृति); नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, अठाहरवां संस्करण : संवत् 2052 वि,

(5) भ्रमरगीत सार; (संपादित कृति); नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नवम् संस्करण : संवत् 2057 वि.

(6) रसमीमांसा; (संपा.)-विश्वनाथ प्रसाद मिश्न, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; षष्ठ संस्करण : संवत् 2043 वि.

(7) हिन्दी साहित्य का इतिहास (संशोधित और प्रवर्धित संस्करणः) : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 1986 वि.

475

(8) रामविलास शर्मा: आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन प्रा लि नई दिल्ली-2 प्रथम पेपर बेक संस्करण 1993

(9) रामस्वरूप चतुर्वेदी: आचार्य रामचंद्र शुक्ल : आलोचना का अर्थ, अर्थ की आलोचना, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद-1 प्रथम संस्करण 2000 ई

(10) रामचंद्र तिवारी: रामचंद्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण-1985 ई